

345. a. Lies: बृहन्. STENZLER.

348. = HIT. IV, 132 JOHNS. S. 500 ed. RODR. a. परितपिरु JOHNS. b. विनाशने RODR.

355. Auch MBH. 5, 1351.

365. = 1, 67 lith. Ausg. II. b. यत्सुरतरसेन संविदं. Die Scholien lauten: आ ईषडु-
न्मीलिते नयने यासां तासाम्, यत्सुरनेन (lies: सुरतरसेन) संविदं सम्यग्ज्ञानं सुखं चाकुरुते
(lies: च कु०) मिथुनैः स्त्रीपुरुषयोर्युगलैरपि तथं (lies: अविताथं) सत्यं यथा स्यात्तथावधारितं
निश्चितं कामसुखं तदेव कामस्य देवस्य निर्वर्हणं पूजनं भवतीति भावः.

383. = II, 157 JOHNS. c. अपूर्वः, was vorzuziehen ist.

385. = NĪTISAṂK. 38. d. जीवलोकं च.

388. b. Man lese mit JOHNS. II, 3 सरोगता.

394. = 1, 88 lith. Ausg. II. c. द्वये st. मध्ये.

398. In den Anmerkungen auf S. 314 lese man M. 4, 241 statt M. 4, 142.

401. c. In der Note ist गूढ st. गाढ zu lesen.

405. = 1, 96 lith. Ausg. II. a. आसारिषिक् क०, बहिः st. यदा. c. मरुतश्चात्पत्तखेद०.

406. = NĪTISAṂK. 68. d. विशति st. वसति.

408. = NĪTISAṂK. 70. a. आत्मरुचितः (gute Lesart). b. परिच्छेदाः.

409. = DĀMPATĪC. 23. c. d. ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेन कीनाः. Vgl. Spruch
3290. BÖRTL. — d. ज्ञानैः im Plural scheint mir nicht angemessen zu sein. STENZLER.

416. Aus ĆĀRṆG. PADDH. DHARMAVIVṚTI 9 ist für a. die Variante यज्ञाध्ययन nachzu-
tragen. Für तत्र in dem in der Note angeführten Spruche liest JOHNSON अत्र.

422. = 1, 78 lith. Ausg. II. b. ज्ञरस्यपि.

423. Vgl. Spruch 2208.

426. Vgl. M. 2, 88.

434. = 1, 40 lith. Ausg. II. b. परिमल्यं (d. i. परिमलो ऽयं). d. धूर्तः st. दत्तः.

439. = 3, 4 lith. Ausg. II. d. संप्राप्तश्च वराट्को.

440. = NĪTISAṂK. 34. d. जीवतु st. नन्दति.

443. = DĀMPATĪC. 17. b. यथान्यायं st. यथायोग्यं.

456. = ed. RODR. S. 374. c. बणिक्स्वभार्यया.

457. Vgl. Spruch 2915.

464. Vgl. Spruch 3187.

466. = 2, 59 lith. Ausg. II. b. विस्तृति.

471. = SĀṂSKṚTAPĀTHOP. 52. c. विलङ्घ्य st. निवृत्त्य.

472. = 1, 60 lith. Ausg. II. a. Besser उद्धृतः, welches passend durch das zweideu-
tige üppig hätte wiedergegeben werden können.